

## गाँधी जी के स्वराज्य की सामाजिक एवं आर्थिक एकजुटता : एक अध्ययन



**डॉ० रेखा कुमारी**  
एम.ए., पीएच.डी. (इतिहास)  
बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय,  
मुजफ्फरपुर (बिहार)

इन वर्षों में गाँधी जी के स्वराज्य की सामाजिक एवं आर्थिक एकजुटता की अपील तथा व्यावहारिक प्रयत्नों के बावजूद संप्रदायवाद का तेजी से उभार हुआ। यह काल की सबसे गंभीर, स्थायी और नकारात्मक संवृति थी। सितम्बर 1924 में पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत में एक हिंसक हिन्दू-विरोधी उपद्रव हुआ जिसमें 155 लोग मारे गए। अप्रैल और जुलाई 1926 के बीच कलकत्ता में दंगों की तीन लहरें आईं जिनमें 138 लोग मारे गए। उसी वर्ष ढाका, पटना, रावलपिंडी और दिल्ली में भी उपद्रव हुए। 1923 और 1927 के बीच संयुक्त प्रांत में, जो सर्वाधिक दंगा-प्रभावित प्रांत था, 91 सांप्रदायिक उपद्रव हुए। झगड़ा दो ही मुद्दों को लेकर था- मुसलमानों की माँग थी कि मस्जिद के आगे बाजे न बजाए जाएँ और हिन्दुओं की माँग थी कि गोकुशी बंद की जाए। सांप्रदायिक संगठनों में वृद्धि हुई और राजनीतिक गठजोड़ों का आधार अधिकाधिक सांप्रदायिक होने लगा।

1919.22 के दिनों में भी जब हिंदू-मुस्लिम भाईचारा चरम सीमा पर था, कांग्रेस और खिलाफत के स्वयंसेवी संगठन प्रायः अलग ही होते थे। उनमें अपने नेताओं के गठबंधन के कारण एकता होती थी, मगर नेताओं के लड़ पड़ने की स्थिति में वे विभाजक भी हो सकते थे। खिलाफत आंदोलन ने राजनीति में बड़े स्तर पर रूढ़िवादी मुल्लों को खींचा था। जमायतुल उल्मा-ए-हिंद के दिसम्बर 1921 के कार्यक्रम में स्वतंत्र भारत की परिकल्पना विभिन्न धार्मिक समुदायों के संघ के रूप में की गई थी। कांग्रेस का प्रचार भी, विशेष रूप से निचले स्तरों पर, सदा धर्मनिरपेक्ष नहीं होता था। सुमित सरकार का कहना है कि आखिरकार रामराज्य की कल्पना में मुसलमानों के लिए क्या अर्थ या आकर्षण हो सकता

था। कांग्रेस और खिलाफत के नेताओं का गठबंधन, जो फरवरी 1922 में गाँधीजी के एकतरफा ढंग से आंदोलन वापस ले लेने पर कमजोर पड़ गया था, 1925 के आरंभ तक जैसे-तैसे चलता रहा जब तक कि दिसम्बर 1923 में कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता करनेवाले मुहम्मद अली ने बारंबार होनेवाले दंगों के कारण गाँधीजी से नाता नहीं तोड़ लिया। वैसे भी जब कमाल अतातुर्क ने 1924 में उस्मानी खलीफा के पद को समाप्त कर दिया तो खिलाफतवालों से उनका मुख्य नारा भी छिन गया था।

जहाँ तक राजनीतिज्ञों एवं शिक्षित लोगों के बीच विभाजनों का प्रश्न है, सुमित सरकार लिखते हैं, 1920 के दशक में सम्प्रदायवाद की वृद्धि का सबसे महत्वपूर्ण कारण 1919 के बाद की राजनीतिक संरचना में की जानेवाली भागीदारी में निहित था। मॉटफोर्ड सुधारों ने मताधिकार को विस्तृत किया था, किन्तु अलग निर्वाचकमंडल न केवल बरकरार रखे गए थे, बल्कि उनमें वृद्धि भी की गई थी। अतः इस व्यवस्था के अंतर्गत कार्यरत राजनीतिज्ञों के लिए इस बात का लोभ स्वाभाविक था कि वे गुटपरस्त नारों के माध्यम से अपने लिए समर्थन बढ़ाएँ और अपने धर्म, क्षेत्र या जाति से संबद्ध समूहों को लाभ पहुँचाने के प्रयास करें। एक अन्य संबद्ध कारण यह था कि 1920 के दशक में शिक्षा का तो पर्याप्त प्रसार हो चका था, किन्तु उसी अनुपात में नौकरी के अवसरों में वृद्धि नहीं हुई थी। “विद्यालय, दफ्तर और दुकान के क्षोभ एवं कटुता को बढ़ती हुई आकांक्षाओं के पूरा न होने की निराशा ने और तीव्र कर दिया” था। यह समस्या 1880 के दशक से ही आरंभ हो चुकी थी, पर अब बहुत बड़े स्तर पर विद्यमान थी, और विरल संसाधनों को हथिया लेने की होड़ सांप्रदायिक वैमनस्य को पुष्ट कर रही थी। समाज के निचले स्तरों पर, जैसाकि पहले होता था, आर्थिक और सामाजिक तनाव प्रायः विकृत सांप्रदायिक रूप धारण कर लेते थे, विशेष रूप से अब जब इसके लिए अनुकूल विचारधारा भी विद्यमान थी। उदाहरण के लिए मार्च 1931 में कानपुर में होनेवाले भारी दंगों की पृष्ठभूमि तैयार करने में 1920 के दशक में हथकरघा उद्योग की मंदी का भी कुछ हाथ रहा था। हथकरघा उद्योग मुख्य रूप से मुसलमानों के हाथ में था। दूसरी ओर, हिन्दू उद्योगपति और व्यापारी आगे बढ़ रहे थे। नवम्बर 1926 की बंगाल सरकार की रिपोर्ट में मैमनसिंह के ग्रामीण क्षेत्र में सांप्रदायिक तनाव का संबंध ‘इस जिले के हिन्दू जमींदारों और मुसलमान ताल्लुकेदारों या जोतदारों की प्रतिस्पर्धा से बताया गया था जो ‘बंगाल टेनेंसी एक्ट अमेंडमेंट बिल में मुसलमान मतदाताओं की गहरी रुचि को प्रतिबिंबित दर्शाती है बंगाल के समस्त

स्वराजी नेतृत्व, यहाँ तक कि 'वामपंथी' सुभाष बोस ने भी टेनेसी अमेंडमेंट की बहस में जमींदारों का पक्ष लिया। यह बहस 1923 से लेकर 1928 तक रुक-रुककर चलती रही और इसने भी मुसलमानों के अलगाव में प्रत्यक्ष और भारी योगदान किया।

तेजी से बढ़ते हुए सांप्रदायिक संगठनों एवं विचारधाराओं ने अभिजन-संप्रदायवाद और जन-संप्रदायवाद के बीच एक कड़ी प्रदान की। इनमें मुसलमानों का योगदान सर्वविदित है-1923 से तबलीग (प्रचार) और तंजीम (संगठन) का प्रसार, 1924 का कोहट उपद्रव, खिलाफत संगठनों के तितर-बितर हो जाने पर मुस्लिम लीग का पुनः सक्रिय हो जाना, 1926 में स्वामी श्रद्धानंद की हत्या। 1924 में अपने (1918 के बाद कांग्रेस से अलग पहली बार आयोजित) लाहौर अधिवेशन में, जिसकी अध्यक्षता जिन्ना ने की थी, मुस्लिम लीग ने ऐसे संघ की मांग की जिसमें मुस्लिम बहुल क्षेत्रों को 'हिंदुओं के प्रभुत्व' से बचाने के लिए पूर्ण प्रांतीय स्वायत्तता प्राप्त हो। यह माँग अलग निर्वाचकमंडलों के अतिरिक्त थी। 1940 में पाकिस्तान की माँग के उठाने से पहले तक यही मुस्लिम लीग का मूलभूत नारा रहा। यहाँ पर कहना आवश्यक है कि इसमें बहुत कुछ हिन्दू संप्रदायवाद की प्रतिक्रियास्वरूप था जो इन वर्षों में तेजी से शुद्धि एवं संगठन के जबाव थे। आर्यसमाजियों ने मोपलों द्वारा बलपूर्वक हिंदुओं को मुसलमान बनाने के बाद शुद्धि आंदोलन चलाया था और श्रद्धानंद द्वारा 1923 के बाद से पश्चिमी संयुक्त प्रांत में भी आरंभ किया गया। इसका उद्देश्य उन मलकान राजपूतों, गूजरों और बनियों को पुनः हिंदू बनाना था। जिन्हें मुसलमान बनाया गया था। असहयोग आंदोलन के दिनों में हिन्दू महासभा, जिसकी स्थापना 1915 ई० में पं० मदनमोहन मालवीय एवं कुछ पंजाबी नेताओं ने हरिद्वार में कुंभ मेले में की थी, लगभग निष्क्रिय हो चुकी थी। मगर 1922-23 में बड़े पैमाने पर उसका पुनरुत्थान हुआ। अगस्त 1923 के बनारस अधिवेशन में शुद्धि का कार्यक्रम भी सम्मिलित था और हिंदू आत्मरक्षा जत्थों के निर्माण का आह्वान किया गया था। वह अधिवेशन आर्यसमाजी सुधारवादियों एवं सनातन धर्म सभा के रूढ़िवादियों के गठजोड़ से बने एक साझे हिंदू सांप्रदायिक मोर्चे का प्रतिनिधित्व करता था और सदा की भाँति इसके अध्यक्ष मालवीय थे। हिंदी को हिंदुओं से जोड़ने की बात काफी हद तक महासभावालों का प्रचार थी और इस कारण इसका विशेष आकर्षण भी मुख्यतः उत्तरी भारत तक ही सीमित रहा (1923 के अधिवेशन में 86.8 प्रतिशत संयुक्त प्रांत, दिल्ली, पंजाब और बिहार से आए थे, जबकि बंगाल, बर्माई,

और मद्रास से कुल मिलाकर 6.64 प्रतिशत ही आए थे)। किन्तु, जो बात आगे चलकर बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध होनेवाली थी, वह 1925 में नागपुर में तिलक के एक पुराने सहयोगी मुंजे के अनुयायी के.बी. हेडगेवार द्वारा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना थी।

सिद्धांत रूप में धर्मनिरपेक्ष होते हुए भी अपरिवर्तनवादी और स्वराजी हिन्दू संप्रदायवाद का सामना करने में समान रूप से असफल रहे, बल्कि वे अपने-आपको स्पष्ट रूप से इसकी संस्थाओं और विचारधाराओं से भी अलग नहीं कर पाए। सितंबर 1924 में दिल्ली में मुहम्मद अली के घर रहते हुए गाँधीजी ने कोहट के दंगों के बाद 21 दिन का उपवास किया। नेताओं की एकता सभा हुई और बहुत थोड़े समय के लिए तनाव में कमी आई। गाँधीजी ने एक बात और कही, ऐसी कही जिसकी आज भी बड़ी प्रासंगिकता है, गाय की जान बचाने के लिए मनुष्यों की जान लेना बर्बर अपराध है। फिर भी पुरुषोत्तमदास टंडन जैसे अपरिवर्तनवादियों ने मालवीय से संबंध बनाए रखा और गाँधीजी ने भी उनसे संबंध विच्छेद नहीं किया। बनारस जैसे स्थानों पर तो हिन्दू महासभा और स्वराज पार्टी एक ही संगठन थे। 1925 के बाद से मालवीय ने मोतीलाल नेहरू के विरुद्ध अपनी कटु प्रतिद्वंद्विता में हिंदू संप्रदायवाद का बहुत प्रभावी उपयोग किया। उन्होंने लाला लाजपत राय के साथ मिलकर एक स्वतंत्र कांग्रेस पार्टी की स्थापना की जो हिन्दू महासभा का ही मोरचा था। चुनावों के सिलसिले में प्रायः हिन्दू सांप्रदायिकता को प्रोत्साहित किया जाता था। उदाहरण के लिए, इलाहाबाद में 1925-26 में मस्जिद के सामने गाने-बजाने की बात को लेकर मुसलमानों की और समझौता करने के अनेक प्रयत्नों को टुकड़ा दिया गया। 1926 के चुनावों के पहले मोतीलाल भी कभी-कभी सांप्रदायिक अपीलों पर उतर आते थे। हताशा में उन्होंने हिंदू महासभा के कुछ लोगों को अपनी ओर मिलाने के असफल प्रयास भी किए ताकि इस प्रचार को झुठला सकें कि वे मुसलमानों के पक्षधर हैं और गो मांस खाते हैं।

### संदर्भ सूची :

1. इण्डियन क्वार्टरली रजिस्टर, 1927, खण्ड 1, पृ. 33-35.
2. सुमित सरकार, पूर्वोक्त, पृ. 271.
3. वही.

4. गवर्नमेंट ऑफ बंगाल पॉलिटिकल कांफिडेंशियल 516 (1-14 ऑफ 1926)
5. सुमित सरकार, पूर्वोक्त में यंग इंडिया 29 मई 1924 के हवाले से; पृ. 273.
6. वही, पृ. 273-74.
7. वही
8. उसी में उद्धृत, पृ. 274.